Vol. 14, Issue: 01, January: 2026
(IJRSML) ISSN (P): 2321 - 2853

नव जागरण और स्त्री प्रश्न

DOI: https://doi.org/10.63345/ijrsml.v14.i1.7

डॉ. पुष्प लता
असिस्टेंट प्रोफेसर - हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय बक्खा खेड़ा, उन्नाव
डॉ विद्या चरण
एसोसिएट प्रोफेसर - हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय रामकोला, कुशीनगर

स्त्रियों के उत्पीड़न और दासता का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना असमानता और उत्पीड़न पर आधारित सामाजिक संरचनाओं के उद्भव और विकास का इतिहास। प्राचीन साहित्य में ढेरों मिथक और कथाएँ मौजूद हैं, जो पुरूष स्वामित्व की सामाजिक स्थिति के विरूद्व स्त्रियों के प्रतिरोध और विद्रोह का साक्ष्य प्रस्तुत करती हंै। स्त्रियों की दासता और दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति का कई स्त्री विचारकांे ने (और कुछ पुरूष विचारकों ने भी) प्राचीन काल में साहसिक एवं तर्कपूर्ण प्रतिवाद किया था, जिसके प्रमाण भारत और सम्पूर्ण विश्व के इतिहास और साहित्य में मिलते हैं।

यद्यपि मध्यकाल के शताब्दियों लम्बे गतिरोध के दौर में स्त्री मुक्ति की वैचारिक पीठिका तैयार करने की दिशा में प्रतिरोध की धारा भी अत्यन्त क्षीण रही, किन्तु आधुनिक विश्व इतिहास के उषाकाल में नवजागरण काल के पुरोधाओं और धर्म सुधार आन्दोलन ने पितृसत्तात्मकता की दारूण दासता के विरूद्ध स्त्री समुदाय में भी नई चेतना का बीजारोपण किया जो कि आगे चलकर स्पष्टतः दिखने लगा। परिणामतः जो देश औपनिवेशिक गुलामी के नीचे दबे होने के चलते मानवतावाद और तार्किक नवोन्मेष से अप्रभावित रहे और जहाँ इतिहास की गति कुछ मंथर रही, वहाँ भी नवजागरण और मुक्ति-संघर्ष काल में स्त्री समुदाय में अपनी मुक्ति की नई चेतना संचरित हुई।

नवजारणकाल में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को भारतीय संदर्भ में भली-भाँति समझने और उसे जन-मुक्ति के व्यापक प्रश्न से जोड़ने के लिए, अध्ययन व प्रयोग के अन्य बहुतेरे उपक्रमों के साथ-साथ इस प्रश्न की विश्व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत होना भी बहुत ज़रूरी है।

स्त्री-मुक्ति के प्रश्न पर चिन्तन और वैचारिक संघर्षो की शुरूआत लगभग दो शताब्दियों से भी कुछ अधिक समय पहले अमेरिकी और यूरोपीय बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियों की पूर्वबेला में हुई थी जब तत्कालीन तथाकथित आदर्शों से प्रभावित और जन आन्दोलनो में सक्रिय जागरूक स्त्रियों ने मनुष्य के 'प्राकृतिक' अधिकार और 'स्वतंत्रता-समानता-भ्रातृत्व' आदि की घोषणाओं को स्त्रियों के लिए भी लागू करने की माँग उठाई। तब से लेकर आज तक विश्व के प्रायः सभी हिस्सों में स्त्री आन्दोलनों को लेकर चली बहसों का और स्त्री-प्रश्न पर चिन्तन का सुदीर्घ इतिहास हमारे पीछे पसरा पड़ा है।

यह सही है कि इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षांे में स्त्री-प्रश्न हमारे सामने उसी रूप में नहीं दिखाई पड़ता जैसा कि पहले था, किन्तु स्त्री की पराधीनता के बहुतेरे संघटक तत्व आज भी ज्यों के त्यों बने हुए हैं। भारत जैसे पिछड़े देश के लिए तो यह बात और अधिक लागू होती है। निस्सन्देह भारत में भी पूरी उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, राष्ट्रीय आन्दोलन के सरगर्म दिनों में, स्त्रियों की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति और अधिकारों से जुड़े प्रश्नों को लगभग हाशिए पर धकेल दिया गया।1

नवजागरण कालीन स्त्री मुक्ति के प्रश्न का यदि हम वैश्विक धरातल पर आँकलन करें तो हम देखते हैं कि यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान स्त्री जागरूकता का विस्तार होना शुरू हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने नारीवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक रूसी सुधारकों के लिए 'महिला प्रश्न' एक केन्द्रीय मुद्दा बन गया था, जबकि भारत में, खासतौर से बंगाल

और महाराष्ट्र में समाज सुधारकों ने स्त्री समाज में फैली बुराइयों पर आवाज़ उठाना शुरू किया।

स्त्रियों के सरोकारों से संबंधित ऐसे अनेक मुद्दे जो नवजागरण काल में नारी आन्दोलन का आधार बने, उसमें सर्वप्रथम है सती प्रथा। जिसके अन्तर्गत राजा राममोहन राय ने 1815 में बंगला भाषा में सती पर हमला बोलते हुए पहला लेख लिखा। अंततः 1817 में सुप्रीम कोर्ट के मुख्य पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार ने घोषणा की कि सती की कोई शास्त्रीय मान्यता नहीं है। इसके एक वर्ष बाद 1818 में बंगाल के तत्कालीन प्रांतीय गवर्नर विलियम बैंटिंक ने सती पर रोक लगा दी। इसके विरोध में 1830 में हिन्दू रूढिवादियों ने कलकत्ता में धर्म सभा की स्थापना की तथा सती प्रथा के खिलाफ बनाए गए कानून को समाप्त करने के लिए एक याचिका ब्रिटिश संसद में दायर की गई जिसके पश्चात् लगभग 10 वर्षों बाद भारतीय दण्ड संहिता में संशोधन कर एक बार फिर 'स्वैच्छिक' और 'जबरन सती' होने के कानून को मंज़ूरी दे दी गई।

नवजागरण काल में स्त्री प्रश्न के एक अन्य बिन्दु के रूप में हम सम्पत्ति पर स्त्रियों के अधिकार की समस्या को भी देखते हैं। इंग्लैण्ड की तर्ज पर भारत में भी जमींदार वर्ग तैयार करने की नीयत से अंग्रेजों द्वारा किए गये 'स्थायी बन्दोबस्त' तथा अन्य सहायक कानूनों के कारण सम्पत्ति के स्वरूप में जो बदलाव आया, उसके फलस्वरूप जायदाद में विधवाओं के दावों का ह्रास हुआ। अंग्रेजों ने खुद भी ब्रिटेन में विधवाओं को उनके पति की खानदानी जायदाद को विरासत के रूप में पाने को इजाज़त नहीं दी।

यहाँ तक कि शादीशुदा स्त्रियों के सम्पत्ति के अधिकारों के लिए उन्नीसवीं सदी के मध्य में संघर्ष शुरू हुआ और वह बीस वर्षों बाद ही जाकर सफल हुआ।2 जिसके फलस्वरूप स्त्रियों के सम्पत्ति पर अधिकार कानून को विधवा पुनर्विवाह कानून से जोड़ दिया गया, जिसके अन्तर्गत यदि सम्पत्ति स्त्री के मूल परिवार (माता-पिता) द्वारा दी गई हो, तो वह पुनर्विवाह के पश्चात् उस सम्पत्ति को अपने पास रखने की हकदार थी। किन्तु यदि सम्पत्ति उसके पति या अन्य उत्तराधिकारियों द्वारा दी गई हो तो उस सम्पत्ति पर उसका अधिकार पुनर्विवाह के पश्चात् समाप्त हो जाएगा बशर्ते कि उसके पति ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही उसे दुबारा शादी करने की घोषणा की हो।

नवजागरण कालीन स्त्री प्रश्न के तृतीय एवं प्रमुख बिन्दु के रूप में हम 'स्त्री शिक्षा आन्दोलन' को देखते हैं। भारत में बालिकाओं के लिए सबसे पहले स्कूल अंग्रेज तथा इसाई मिशनरियों द्वारा 1810 में शुरू किए गए। नवजागरण काल के मध्य तक बंगाल, खासतौर से कलकत्ता में स्त्रियों की शिक्षा का मुद्दा उदार हिन्दुओं, ब्राहमणों और प्रगतिशील छात्रों के लिए आन्दोलन का विषय बन गया। फलतः बंगाल में हिन्दू एवं ब्राहमण कन्या पाठशालाएँ खोली गईं, जहाँ ऊँची जातियों की लड़कियाँ पढ़ने लगीं।

'गृह शिक्षा आन्दोलन' के नाम से मशहूर इस आन्दोलन की शुरूआत अंग्रेज, स्कॉटलैण्ड तथा उत्तरी अमेरिकी मिशनरियों द्वारा की गई जिसमें कुछ वर्षों बाद सवर्ण भी शामिल हो गए।3 इस प्रकार स्त्रियों की शिक्षा के आंदोलन का उल्लेख इतिहास में आमतौर से उभरते मध्यवर्ग द्वारा अपनी स्त्रियों को पाश्चात्य तौर-तरीकों में ढालने की आवश्यता के रूप में किया गया न कि उनको स्वयं के अस्तित्व के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से।

इसी क्रम में एक अन्य दलित समाज सुधारक ज्योतिराव फुले ने पूना में लड़कियों के लिए अपना पहला स्कूल खोला जिसमें लड़कियों को शिक्षा देने के लिए उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले पहली भारतीय महिला शिक्षक के रूप में हमें दिखायी देती हैं। इस प्रकार 1852 तक फुले ने तीन कन्या पाठशालाएँ तथा अछूतों के लिए एक स्कूल खोला।

उन्नीसवीं सदी में नवजागरण एवं औद्योगिक क्रांति के आगमन के बाद इंग्लैण्ड और पूर्वोत्तर अमेरिका में खेतों में काम करने वाली मजदूर औरतें बड़े पैमाने पर सूती कपड़ा मिलों में भरती हुई थी। इस प्रकार गरीबों की दुनिया से रोज़मर्रे के स्वाभाविक जीवन से स्त्रियाँ जैसे अदृश्य हो गई थीं और उन गरीब औरतों की दुनिया से स्वाभाविक जिन्दगी की गंध और छवि अदृश्य हो गयी थी।4

यदि ध्यान से देखा जाए तो नारी मुक्ति आन्दोलन और नारी मुक्ति चेतना के इतिहास की शुरूआत अमेरिकी क्रांति के दौरान 'अबिगेल एडमस' और 'मर्सी वारेन' के नेतृत्व में मताधिकार और सम्पत्ति के अधिकार सहित सामाजिक समानता की माँग और फ्रांसीसी क्रांति दौरान 'ओलिम्प द गाउजेस' द्वारा 1791

Vol. 14, Issue: 01, January: 2026
(IJRSML) ISSN (P): 2321 - 2853

में राष्ट्रीय असेम्बली में प्रस्तुत 'स्त्रियों और स्त्री नागरिकों के अधिकारों की घोषणा' से मानी जाती है।

जहाँ तक भारतीय नवजागरण की बात है तो स्त्री प्रश्न की दृष्टि से उसका मूल चरित्र कभी सेकुलर नहीं रहा। उदार चेहरे का मुखौटा लगाकर वह स्त्री की राहों को कीलने का कोई भी जतन नहीं छोड़ता। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर 1850 में विधवा पुनर्विवाह पर लगे प्रतिबंध को समाप्त कर 1856 में कानून को पारित त® करा लेते हैं किन्तु समाज इसे मुक्त हृदय से स्वीकार नहीं कर पाया।5

दयानन्द सरस्वती केवल संतानहीन विधवाओं के ही पुनर्विवाह के पक्षधर थे।6 हालाँकि 18वीं सदी के उत्तरार्ध में इन निस्सहाय विधवाओं को आश्रय देने के लिए पं॰ रमाबाई ने 1898 में 'कृपा सदन' की नींव रखी।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नवजागरण कालीन हिन्दी एवं हिन्दीतर भाषाओं का पुरूष समाज ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व का पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों की आत्मभ्व्यिक्ति के प्रश्न, धर्म एवं शास्त्र के प्रति उनकी (स्त्रियों की) पुनव्र्याख्या, मानवीय गुहारों, हक की लड़ाई और पितृसत्तात्मक व्यवस्था की अमानुषिकता के प्रति स्त्री के रोष पर कान भी नहीं देना चाहता। बल्कि क्रूर सत्य तो यह है कि इन विद्रोही स्त्रियों की आवाज़ को बाहर ही बाहर घोंट देना चाहते हैं ताकि अन्तःपुर में कैद 'पालतू' स्त्रियाँ 'बिगड़' न जाएं।

-इति।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मेरी वोल्सटनक्राफ्टः स्त्री-मुक्ति की आदि-सिद्वान्तकार, पृष्ठ-12
2. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, पृष्ठ-37
3. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, पृष्ठ-39
4. दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी, पृष्ठ -13
5. बहुवचन- अक्टूबर-दिसम्बर 2009 अंक, पृष्ठ-196
6. वही, पृष्ठ-196